International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 02(III), April - June, 2023, pp. 205-210

संघर्ष का कैनवास और मीराँ की अभिव्यक्ति

डॉ. प्रकाशदान चारण*

प्रस्तावना

भक्त कवयित्री मीराँबाई की पदावली अपने भक्तिभाव के साथ जागतिक भाव को नया सृजनात्मक संदर्भ प्रदान करती है। दरद की दीवानी मीराँ प्रेमा भक्ति की तन्मयता में लोक लाज तज जब घुंघरू बांध नाचती हैं तो न केवल वह अपनी विरह व्यथा, अपितु संसार के हर दुखी प्राणी के दरद को एक नई दिशा प्रदान करती हैं।मीराँ का नाचना कुल की परम्परा के विरुद्ध है परन्तु मीराँ को नाचना प्रिय है। ऐसा क्यों ? इसका उत्तर मीराँ की प्रेमा भक्ति में खोजा सकता है। लोग मीराँ को बावरी कह रहें हैं। सास कुलनासी कह रही है। जबकि मीराँ का विश्वास है कि इसी नाच से उसे सांवरिया मिलेगा जो अविनाशी है। मीराँ को कुलनासी बनकर अविनाशी की विश्वासी बनना स्वीकार है। मीराँ का नाच साधारण नहीं, यह दरद के भीतर गिरधर की अनुभूति का अंदाज है।यह नाच, नाच नहीं, मीराँ का गिरधरपन हैं। यह नाच कृष्ण के चरित से एकाकार होने या मीराँ के कृष्णमय होने का प्रमाण है। जागतिक स्तर पर मीराँ वैधव्य की वेदना भोग रही थी। यह नाच ही है जिसने मीराँ को मनमोहन की मौज में मस्त बना दिया।यह मस्ती सूफियाना थी,जहाँ भाव और अभाव एकाकार हो जाते हैं।

मीराँ दुःख का रोना नहीं रोती है। वह घनीभूत वेदना में डूबकर भी न अपने लोक को भूलती है और न ही परलोक को। एक वेदना ही है जिसने मीराँ के लोक और परलोक को एकाकार कर दिया। जैसे जैसे दरद बढ़ता है मीराँ का कृष्ण के प्रति दीवानापन भी बढ़ता है। अब दरद की अनुभूति में उसे कृष्ण की उपस्थिति का अहसास होने लगता है।तभी तो मीराँ कह उठती हैं –"हे री मैं तो दरद दीवानी मेरा दरद न जाणै कोय..... दरद की मारी वन–वन डोलूँ, बैद मिला नहीं कोय, मीराँ की प्रभु पीर मिटैगी, जद बैद साँवलिया होय।"

मीराँ यूँ ही दरद की दीवानी नहीं बनी हैं। मीराँ ने वैधव्य की वेदना के साथ प्रगाढ़ होते सांसारिक अधूरेपन की अनुभूति को दरद की दीवानी होकर ही जाना हैं। दरद की अनुभूति के साथ मीराँ में प्रेमाभक्ति की तल्लीनता बढ़ती जाती है। जिस जोगी से प्रेमा भक्ति का दरद उपजा वही जोगी अब बैद हो गया। जो जोगी किसी का मीत नहीं वही अब मीराँ के मन का मीत हो गया। यह सब मीराँ ने दरद की दीवानी होकर ही जाना है।दरद ही है जिसने मीराँ के अनुभूत संसार को इतना व्यापक कर दिया कि संसार की सब अनुभूतियाँ उसमें समाहित हो गई। मीराँ के दरद में एक तरह से विरुद्धों का सामंजस्य है।भाव दशाओं का समन्वय है। जीवन का अनुभूत सत्य है।

मीराँ में दरद का कोई एक पक्ष और एक स्तर नहीं हैं। दरद की सम्पूर्ण दशाएं और सब स्तर इसमें समाहित हैं। जागतिक स्तर पर स्त्री के अबलापन और वैधव्य का दरद झेलती मीराँ का एक दरद यह भी हैं कि वह तो प्रेमाभक्ति में अपने गिरधर के हाथ बिक गई हैं और लोग उसे बिगड़ी कह रहे हैं। समाज का नियम तो यह है कि जो बिक जाता है उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता हैं फिर जब मीराँ गिरधर के हाथ बिक गई हैं तो उसे बिगड़ी क्यों कहा जा रहा है– 'मीराँ गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कह्याँ बिगड़ी'। मीराँ संसार से भाग नहीं रही हैं, वह मुँह नहीं मोड़ रही है।वह तो उसके भीतर रह कर उसी के कायदे कानून बता रही है। स्त्री को वस्तु रूप में देखने वाला संसार अब मीराँ को बिगड़ी कैसे कह सकता है जबकि उसने तो स्वयं को गिरधर के हाथों बेच दिया है। मीराँ स्त्री अस्मिता को आज के फेमिनिस्टों की तरह पुरुष के प्रतिरोध में स्त्री के पुरुष होने की तरह नहीं, वह स्त्री अस्मिता को स्त्रीत्व के पूर्ण भाव के साथ सामने रखती है। मीराँ का दरद तो देखिये लोग

* सहायक आचार्य (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय रोहट, पाली, राजस्थान।

उसे बिगड़ी कह रहे हैं और जिसके लिए मीराँ बिगड़ी कहलाई वो ह्रदय से कठोर है।मीराँ के प्राणों के आधार ने ही मीराँ को निराधार कर दिया।यहाँ वह अपने लोक की पीड़ा के भीतर से परलोक की पीड़ा को सिरजती है। मीराँ के चित्त में लोक पहले है और परलोक बाद में।मीराँ अपने अनुभूत को दबाती नहीं है वह उसे उसी रूप में गिरधर तक ले जाती है। जब लोक ने सुनी नहीं तो मीराँ ने गिरधर को सुना दिया।जैसे जैसे लोक में मीराँ की उपेक्षा होती गई वैसे वैसे मीराँ की गिरधर से अपेक्षा बढ़ती गई। राणा मीराँ के प्राण लेने को उतारू है और मीराँ गिरधर को प्राण देने। प्राणों की बाजी लगी है। मीराँ को प्राणों की चिंता नहीं है लेकिन मर्जी मीराँ की, तभी वह 'सीसोद्यों रूठयो तो म्हांरो काँई करलेसी'से 'तनक हरि चितवाँ म्हारी ओर,हम चितवाँ थें चितवो ना (णा) हरि, हिवड़ो बड़ों कठोर'तक सहज बनी रहती है।मीराँ साफ कर देती है कि नश्वर संसार में उसके प्राण लेने की क्षमता नहीं है इसलिए वह अपने प्राण अविनाशी को ही देगी।इसप्रकार प्राणों की यह बाजी मीराँ जीतती है तभी वह कह सकी –'मीराँ रे प्रभु हरि अविनासी देस्यूँ प्राण अकोर।'

मीराँ ने छोड़ा कुछ नहीं, न लौकिक पति के प्रति अपना प्रेम समर्पण और न अलौकिक पति गिरधर के साथ अपनी लोक संस्कृति ।वह काग भी उड़ाती है तो पण्डित जोशी से बुझावल भी करती है– 'काग उडावत दिन गया बूझूं पण्डित जोसी हो, मीराँ बिरहण व्याकुली दरसण कद होसी हो।' मीराँ ने संसार का अधूरापन देखा भी था और भोगा भी था। परन्तु मीराँ ने उस अधूरेपन के भीतर ही पूरेपन की तलाश की और इसी तलाश में उसे दर्द भरी 'तलफ तलफ जिव जासी'की भावदशा प्राप्त होती है। मीराँ को राणा का सामंती रंग में रंगा देश नहीं भाता है। इसलिए वह निकल पड़ती है गिरधर की तलाश में उस अनंत यात्रा पर जहाँ उसका प्रीतम मिले। वह भी पूरा न कि अधूरा। 'नहिं सुख भावै थारो देसलड़ो रँगरूड़ो' से 'चालाँ वाही देस प्रीतम पावाँ चालाँवाही देस' की वह यात्रा जहाँ वह कह सके 'वर पायो छै पूरो' लेकिन मीराँ इस यात्रा में कभी यह नहीं भूली कि 'छैल विराणों लाख के हे, अपणे काज न होइ।ताके संग सीधारतां हे, भला न कहसी कोइ।बर हीणों अपणों भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कोइ। जाके संग सीधारतां हे, भला कहै सब कोइ। 'मीराँ ने न खुद को छिपाया और न लोक को छिपने दिया। मीराँ के पास एक खुलापन था जिसमें उसका खालीपन भी प्रकट रूप में विद्यमान रहता है। आज तो आत्म विज्ञापन भी कविता है। परन्तु मध्यकालीन परिवेश में साहित्यिक चिंतन आज के उल्ट था जहाँ संसार के साथ वैयक्तिक संबंधों को छिपाने की प्रवृत्ति प्रधान थी। जिसका अनुसरण लगभग सभी भक्तों और संतों ने किया लेकिन मीराँ तो मीराँ थी, इसलिए मीराँ पर अपने समकालीनों का दबाब भी अधिक था। मीराँ की इस विशेषता को प्रो. माधव हाड़ा इसप्रकार देखते हैं "मध्यकालीन संत–भक्त अपनी कविता में अपनी वैयक्तिक पहचान और अपने सांसारिक संबंधों के संबंधमें मौन हैं,जबकि मीराँ की कविता में यह सब आग्रहपूर्वक मौजूद है। मध्यकालीन संत दृभक्त जीवन और जगत् के निषेध की मान्य धार्मिक और लौकिक धारणा के कारण अपने जन्म, परिवार, कुटुंब, स्थान और सांसारिक संबंधों के द्वंद्व और तनाव को अपनी कविता का सरोकार नहीं बनाते। यह सब उनकी प्राथमिकताओं में नहीं है.....मीराँ की कविता में उसकी वैयक्तिक पहचान, सांसारिक संबंध और सुख–दुःख बहुत मुखर और पारदर्शी ढंग से मौजूद हैं।मीराँ संत–भक्तों की तरह न तो इनके प्रति उदासीन है और न इनको अनदेखा करती है ।"1

हिन्दी आलोचना की चाहे पहली परम्परा हो या दूसरी परम्परा मीराँ उसमें उपेक्षित ही रही ।इतना ही नहीं जिन्होंने आलोचना की इन परम्पराओं पर सवाल उठाये उन्होंने भी मीराँ की भक्ति की स्वाभाविकता में विवशता और मजबूरी ही अधिक देखी जबकि मीराँ की भक्ति में भावों की प्रगाढ़ता और अनुभूति का गहरापन अन्य संत भक्तों से कहीं अधिक था।एक तो वह स्त्री थी और दूसरा उसके संकट भी बड़े। मीराँ के महत्त्व को कम करने के प्रयास केवल सामंती परिवेश की ऊपज ही नहीं थे अपितु उनके समकालीन संत– भक्तों ने भी मीराँ के कृष्ण प्रेम पर सवाल उठाते हुए उसे खूब बुराभला कहा। पुरोहित रामदास द्वारा मीराँ को गालियाँ देने का प्रसंग 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' में मिलता है जिसमें वह मीराँ को रांड और कुल्टा तक कहते हैं– "एक दिन मीराँबाई के श्री ठाकुरजी के आगे रामदासजी गावत हुते, तब मीराँबाई बोली,जो दूसरो पद ठाकुर जी के गावो,तब रामदास जी ने कह्यो मीराँबाई सौ, अरी दारी। ये रांड कौन के पद हैं।ये कहा तेरे खसम को मूड़ हैं। जा, आज से तेरे मुँहणों कबहूँ न देखौगो। तब तहाँ से सब कुटुम लेके रामदास जी उठ चले। मीराँबाई ने बहुत

बुलाये पर वे आये नहीं।"2 विधवा स्त्री को रांड और चरित्रहीन को कुल्टा कहा जाता है। अब सोचिये मीराँ पर अपने समकालीनों का कितना दबाब रहा होगा। किसी स्त्री के विधवापन का मजाक उड़ाना और उसके चरित्र पर सवाल उठाना पुरुष प्रधान समाज के लिए कितना सरल था, लेकिन स्त्री की पीड़ा के लिए एक भी शब्द उस समाज के पास नहीं था। मीराँ पर उसके परिवार के दबाब की ओर तो आलोचकों का ध्यान गया लेकिन भक्त की खोल ओढ़े पुरुष की मानसिकता को जानबूझकर अनदेखा कर दिया गया। जिससे आम जन तक यह सन्देश गया कि राजपूती समाज में स्त्री का कोई सम्मान नहीं था। सामंती सोच के नाम पर पूरे समाज को कटघरे में खड़ा कर दिया गया। ऐसा लगता है कि स्त्री के साथ जो कुछ बुरा हों रहा था वह घर या महल की चारदीवारी के भीतर ही हो रहा था, बाहर तो सब कुछ सामान्य था। कबीर पहले ही कह चुके थे 'नारी की झांई परत अँधा होत भुजंग' शायद इसीलिए जीव गोस्वामी किसी नारी से मिलते नहीं थे। ढोल ग्वार शूद्र पशु नारी की बात पर गोस्वामी तुलसीदास जी के विरुद्ध तो आज भी मोर्चाबंदी जारी है लेकिन कबीर के बचाव में पूरी दूसरी परम्परा खड़ी है। हम क्षेपक या पूरे प्रसंग पर न भी जायें तो कबीर अगर स्त्री के मायावी रूप के प्रसंग पर ऐसा कहते हैं तो गोस्वामी जी भी तो मूर्ख स्त्री के संबंध में ऐसा कह सकते हैं। अगर पुरुष मूढ़ हो सकते हैं तो स्त्रियाँ भी तो मूर्ख हो सकती हैं। लेकिन नहीं गोस्वामीजी को स्त्री विरोधी कुलीन समाज के प्रतिनिधि कवि दिखाने में आज भी दूसरी परम्परा के वामपंथी और तथाकथित फेमिनिस्ट आलोचक कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। जबकि सवाल तो पूरे समाज से पूछा जाना चाहिए जो स्त्री विरोधी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है।गौर करने वाली बात यह है ऐसे गंभीर और गूढ़ सवाल मीराँ के माध्यम से ही सामने आ सकते हैं इसलिए आलोचकों ने मीराँ पर गंभीर चिंतन के स्थान पर कामचलाऊ टिप्पणियों से काम चलाया।

मीराँ अपनी कविता में सामान्य स्त्री के दरद से अपने को जोड़ती है लेकिन वैयक्तिक जीवन में वह सामान्य स्त्री तो नहीं थी ।राजकुल की अपनी पहचान को मीराँ ने कभी छुपाया भी नहीं ऐसे में अगर मीराँ के साथ दुर्व्यवहार हो सकता है तो एक सामान्य स्त्री की क्या दशा रही होगी? मीराँ का यह कहना "साजनियाँ दुसमण होय बैठ्या सबने लागूँ कड़ी" एक तरह से अपने परिवार के साथ समकालीनों के दबाब की अनुभूति की अभिव्यक्ति ही तो है ।मीराँ अपने सामंती परिवार से ही नहीं पूरे सामंती परिवेश से लड़ रही थी।वह कुल के ठेकेदारों से ही नहीं धर्म के ठेकेदारों से भी लड़ रही थी।मीराँ का बढ़ता प्रभाव उनके समकालीनों को कैसे अखर रहा था और बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए कैसी चालें चली जाती थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' में एक प्रसंग आता है कि "गोविन्द दुबे मीराँ के पास सत्संग के लिए गए थे,गुसाई जी ने उनके लिए एक श्लोक लिख भेजा, और कहलवाया कि मीराँ से उस श्लोक का अर्थ करवाओ। मीराँ अर्थ नहीं कर सकी, गोविन्द दुबे निराश हो गुसाई जी के शरणागत हुए।"3 यह था मीराँ का दरद जिसको मीराँ ही सह सकती थी। इस दरद का कोई भागीदार नहीं था। न परिवार न धर्म ।'अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यते'यानी सृष्टि की सम्पूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री से होती है, कहने वाली धार्मिक व्यवस्था को मीराँ के संबंध में कैसे उल्ट–पलट दिया गया कि कदम कदम पर मीराँ को उसकी रिक्तता का बोध करवाया गया।आज भी मीराँ अपनी कविता के माध्यम से हिन्दी आलोचना के पुरुषवादी दृष्टिकोण से लड़ रही है।मीराँ भक्तिकाल की स्वर्णयुगी धारणा में फिट नहीं बैठ रही है , इसलिए न तो उसे आलोचना की पहली परम्परा में पूरा महत्त्व मिला और न ही दूसरी परम्परा में जिसकी वह हकदार है।

हिन्दी आलोचना में मीराँबाई की उपेक्षा को मैनेजर पाण्डेय स्वीकार जरूर करते हैं लेकिन वे 'शायद' का सहारा लेकर मीराँ के बहाने नामवर जी की आलोचनात्मक पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज' पर सवालिया निशान लगाने पर अधिक फोकस करते हैं। दूसरी परम्परा की खोज उन्हें पहली परम्परा की नयी व्याख्या से अधिक कुछ नहीं लगती है। उनका मानना है कि "यदि सचमुच कोई दूसरी परम्परा बनती है तो उसे आप वैकल्पिक परम्परा कह सकते हैं, या कहना चाहिए। नामवर जी ने 'दूसरी परम्परा की खोज' में जिस दूसरी परम्परा की खोज की है वह मेरे ख्याल से वैकल्पिक बहुत कम है। कुल मिलाकर उसमें नामवर जी ने एक ओर कवियों में तुलसीदास और आलोचकों में रामचंद्र शुक्ल से भिन्न,कवियों में कबीर और आलोचकों में हजारीप्रसाद द्विवेदी के लेखन को ध्यान में रखकर दूसरी परम्परा की व्याख्या या उसका विवेचन किया है। पर यह सही है कि उसमें भी मीराँबाई नहीं हैं।"4

हिन्दी आलोचना में मीराँ की उपेक्षा को समझने के लिए साहित्य को संवेदना की अभिव्यक्ति कहने वाले रामस्वरूप चतुर्वेदी के मीराँ संबंधी दृष्टिकोण को भी जानना जरूरी है। वे मीराँ के काव्य में प्रेम और भक्ति के सहज भाव की बात तो करते हैं लेकिन मीराँ की काव्यभाषा की सर्जनात्मक क्षमता को सूर और तुलसी से निम्न कोटि की घोषित कर देते हैं। यानी हिन्दी आलोचकों ने मीराँ की सहजता में भी सर्जनात्मकता का अभाव तो खोज ही निकाला– "मीराँ के कृतित्व में प्रेम और भक्ति के पक्ष सहज भाव से घुल–मिल गए हैं" आगे वे कहते हैं "मीराँ की काव्यभाषा में सर्जनात्मक क्षमता कम है। सूर और तुलसी जैसा भाषा का कुशल प्रयोग नहीं दिखाई नहीं देता।"5

मीराँ की अलौकिक भक्ति और लौकिक संघर्ष के संबंध पर बात करते हुए प्रो. माधव हाड़ा जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं वह भक्ति को एक विकल्प से अधिक नहीं मानने पर आधारित है।माधव हाड़ा की दृष्टि में मीराँ का संघर्ष प्रमुख है भक्ति गौण। वे भक्ति को सिर्फ संघर्ष का हथियार मानते हैं।यहाँ माधव हाड़ा गोता लगाकर दूसरी परम्परा की विचार दृष्टि में जा बैठते हैं ।जिसका पहले से यही मानना है कि मीराँ ने सती होने से बचने के लिए भक्ति का विकल्प चुना। वे मीराँ के गिरधर प्रेम को डरी सहमी स्त्री के रागालाप से अधिक मानने को तैयार नहीं है। वे मीराँ को स्वाभाविक भक्त नहीं, मजबूरी में भक्त मानते हैं।

मीराँ इस लोक में वैधव्य की पीड़ा को भोग रही थी तभी तो बार बार हरी के अविनाशी रूप को स्मरण करती है। अभाव से ही भाव की महत्ता सिद्ध होती है।मीराँ की भक्ति को विवशता या मजबूरी कह कर हमजाने अनजाने में मीराँ के संघर्ष को उभारने के स्थान पर दबाने का काम करते हैं। मीराँ का संघर्ष जितना स्वाभाविक और सच्चा है मीराँ की भक्ति भी उतनी ही स्वाभाविक और असल ।भक्ति ने मीराँ के संघर्ष को दिशा दी और संघर्ष ने मीराँ की भक्ति को गंभीरता। मीराँ अपनी भक्ति और संघर्ष दोनों में सहज थी परन्तु हिन्दी आलोचक अपनी परम्परा और विचारधारा की लीक छोड़ने को तैयार नहीं, इसलिए वे मीराँ के प्रति असहज ही बने रहे।

मीराँ के दरद में स्त्री जीवन का संघर्ष मुखरित होता है इसमें कोई दो राय नहीं, लेकिन मीराँ में वामपंथी क्रांतिकारिता की विचार दृष्टि फिट कर देना भी सही नहीं है। मीराँ की भक्ति में स्वाभाविकता को नकारना एक तरह से मीराँ को भाव शून्य कर देना है। अगर मीराँ भाव शून्य हो जायेगी तो पति की अकाल मृत्यु का दरद विचारों की टकराहट में दब जायेगा। तब गिरधर के प्रति उसका प्रेम, प्रेमा–भक्ति के समर्पण की भाव दशा के स्थान पर प्रतिशोध की विचार दशा बन कर रह जायेगा। जिसके कारण मीराँ का दरद प्रतिशोध की विध्वंसात्मक प्रतिक्रिया से अधिक नहीं रह जायेगा।जैसा कि आज की फेमिनिस्ट मानसिकता में देखा जाता है। जबकि मीराँ ने अपने दरद को प्रतिशोध में नहीं, तलफ तलफ जिव जासी की भाव दशा तक पहुँचाया। जब मीराँ कहती है 'मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोय' तब पति की अकाल मृत्यु का दरद अधिक गंभीर हो जाता है न कि वैवाहिक संबंधों का बहिष्कार जैसा दूसरी परम्परा के आलोचक मानते हैं। 'दूसरो न कोय' में प्रतिकार की विचारदृष्टि खोजने से अच्छा होता कि इसमें मीराँ के वैधव्य के दरद की भाव दृष्टि को समझने की कोशिश की गई होती।

वैधव्य की वेदना के साथ पति की स्मृति को मीराँ एक पल के लिए भी भूलती नहीं है ।जब मीराँ पर पारिवारिक उत्पीड़न बढ़ता हैं तो उस पल उसे अपने आराध्य का गिरधर वाला रूप ही स्मरण आता है। भक्ति भाव और सामाजिक मनोभाव का संतुलन मीराँ में सदैव विद्यमान रहा है। मीराँ का गिरधर संबोधन दो प्रसंगों में अधिक आया है, एक विष के प्याले और दूसरा जोगी के सम्बन्ध में। यानी विष के प्रसंग में पारिवारिक उत्पीड़न के समय गिरधर रूप और जोगी प्रसंग में पति स्मृति में गिरधर रूप।कहने की आवश्यकता नहीं कि मीराँ की प्रेमा भक्ति में गिरधर रूप की छाप मीराँ के दरद की अभिव्यक्ति है। 'बस्याँ म्हारे नैनन (णेणण) माँ नंदलाल' से उपजी प्रेमाभक्ति गिरधर नागर में जाकर अपनी मार्मिकता प्राप्त करती है। दरद की दीवानी होकर ही मीराँ गिरधर का अनुराग पाती है तभी वह कह सकी –'ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी' या "जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होई"या 'जोगियारी प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल'अब मीराँ दरद की हो चुकी है और दरद मीराँ का। मीराँ जोगन रूप में कासी में करवत लेने से भी नहीं डर रही है क्योंकि अब मीराँ अपने गिरधर को देखे बिना रह नहीं सकती। मीराँ ने जान लिया कि दरद तो प्रेम की नियति है तभी वह पूछती है 'प्रेम भक्ति को पैड़ो ही न्यारो हमकूँ गैल बता जा'और यह गैल (राह) 'तलफ तलफ जिव जासी' वाली मीराँ के लिए 'जोत में जोत मिला जा'की पूर्णता का पथ बन जाता है।

कृष्ण का मनोरंजक रूप मीराँ के पदों में बहुत कम देखने को मिलता है। क्योंकि मीराँ का कृष्ण प्रेम मन बहलाने के लिए नहीं,जीवन संग्राम में दरद की अनुभूति का पैगाम हैं। मीराँ अपनी प्रेमा भक्ति में सांसारिक सुखों से ऊपर उठती हैं लेकिन सांसारिक दुखों से भाग कर नहीं ।तभी तो वह भगत देख राजी होती हैं और जगत देख रोने लगती हैं। वह साधू संतों के संग बैठ लोकलाज खोने से डरती नहीं क्योंकि उसने आँसुओं के जल से प्रेम बेल को सींचा हैं। कोई डरता है तो इसलिए कि उसकी सुख सुविधाएँ छिन न जाएँ जिसने सुख सुविधाओं को छिटका दिया उसको किसका डर। अब चाहे राणाजी विष का प्याला भेजे, चाहे लोग उसे बिगड़ी कहे दरद की दीवानी मीराँ तो अब 'जोगणि होई जुग ढूँढ़सूँ रे म्हारा रावलिया रो साथ' की खोज में निकल पड़ी है।

जोगी प्रसंग में मीराँ गिरधर रूप का स्मरण अधिक करती है।जोगी संबोधन को मीराँ की वैधव्य वेदना के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए न कि किसी जोगी (संन्यासी) के साथ मीराँ के सांसारिक संबंध के प्रसंग में ।मीराँ के किसी जोगी के प्रति आकर्षण की बात प्रामाणिक नहीं है। मीराँ का जोगी संबोधन किसी साधु के प्रति आसक्ति की अभिव्यक्ति नहीं है, वैधव्य वेदना की भावाभिव्यक्ति है। जोगी संबोधन में मीराँ की गिरधर छाप उसके दरद की अभिव्यक्ति ही तो है। इसी प्रकार अविनाशी छाप में मीराँ की वैधव्य वेदना ही अपना आकार–प्रकार प्राप्त करती है। मीराँ के जोगी संबोधन के दार्शनिक पक्ष को मीराँ के दरद से जाना और समझा जा सकता है। दार्शनिक स्तर पर आत्मा अमर होती है। हमारे यहाँ मृत्यु को संसार से चिर विराग कहा जाता है। मृत्यु को चिर निद्रा भी कहा जाता है। जोगी भी संसार का विरागी होता है।एक तरह से जोगी सांसारिक जीवन से विरक्त होकर जीवन जीता है।मीराँ का जोगी संबोधन पति वियोग से उपजा है। मीराँ ने भी पति की मृत्यु को सांसारिक वियोग के रूप में ही लिया होगा। यानी पति से सांसारिक वियोग न कि प्रेम का आत्मिक स्तर का वियोग। पति की मृत्यु एक तरह से मीराँ के लिए पति का भावात्मक स्तर पर जोगी होना है। राजपूती समाज में विधवा स्त्री की वेशभूषा में जोगिन यानीसंन्यासी प्रकृति को देखा जा सकता है। मीराँ की वेशभूषा में भी जोगिन वाला ही रूप था। एक तरह से पति भोजराज मीराँ के लिए मृत्यु के बाद जोगी हो गये और मीराँ जोगिन होकर अपनी प्रेमा भक्ति में गिरधर की दीवानी।

जैसा कि मैंने पहले कहा है कि हमें मीराँ की भक्ति और संघर्ष में प्रमुखता किसकी है? इस पर कोई निर्णय देने से पहले मीराँ के संघर्ष की रचनात्मकता और भक्ति की रागात्मकता के बीच संबंध पर सूक्ष्म चिन्तन–मनन की आवश्यकता है। मीराँ को क्रांतिकारी घोषित करने की जल्दबाजी में मीराँ की भक्ति के रागात्मक पक्ष को भूला देना भी सही नहीं है। मीराँ की भक्ति को संघर्ष में प्रयुक्त युक्ति या हथियार कहना जैसा की प्रो. माधव हाड़ा मानते हैं (मीराँ के आजीवन संघर्ष में भक्ति की भूमिका एक युक्ति या हथियार से अधिक नहीं है) या 'मीराँ के लिए कृष्ण भक्त बनना एक मजबूरी थी।उसका प्रमुख उद्देश्य तो स्वयं को सती होने से बचाना था एवं इस प्रथा के विरुद्ध मोर्चाबंदी करना था' जैसा अरविन्द तेजावत मानते हैं।हो सकता है यह मीराँ की कविता का एक पक्ष हो, लेकिन इसको निष्कर्ष और निर्णय की तरह चस्पा कर देना भी फैसला सुनाने की जल्दबाजी भरी जिद्द ही कहा जायेगा ।मीराँ को क्रांतिकारी घोषित करने की होड़ और हल्ले में कहीं मीराँ की कविता की सहजता को दबा न दिया जाये, जिसकी पूरी संभावना नजर आ रही है ।इसको हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं, मीराँ का एक प्रसिद्ध पद है 'मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' अगर हम इसमें दूर की कोड़ी निकालने की कोशिश न करें जैसा कि प्रगतिशील आलोचना में होता है और किया भी गया है, तो मीराँ का इस पद में जोर 'गिरधर गोपाल' पर ही है 'दूसरा न कोई' पर नहीं। भावाभिव्यक्ति की सहजता के क्रम में भी 'गिरधर गोपाल' पहले आया है और 'दूसरो न कोई' बाद में।गिरधर गोपाल पर जोर देने के लिए मीराँ ने लोक और परलोक दोनों को समाहित कर लिया। यानि गिरधर गोपाल को छोड़ कर न इस लोक में न परलोक में मीराँ को कोई प्रिय है। मीराँ की कविता की इस सहजता को छोड़ कर जब दूर की कोड़ी निकालने के आधार पर अर्थ किया गया तो 'दूसरो न कोई' पर अधिक जोर देने की बात कहकर मीराँ को विवाह संस्था की विद्रोही बना दिया और 'दूसरो न कोई' में पत्नी की पति के प्रति तिरस्कार भावना की कोड़ी खोज निकाली गई। यह कोड़ी सबसे पहले नामवर जी ने खोजी। जिसका कॉपीराइट बाद में सुमन राजे ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' में लिया।जब वे लिखती हैं – "मध्ययुगीन साहित्य में मीरा का जीवन और साहित्य नारी– विद्रोह का रचनात्मक आगाज है..... कृष्ण के प्रति

पूर्ण प्रणति के साथ व्यवस्था से विद्रोह एक अद्भुत और विरल संयोग है। नारी–जीवन की सर्वमान्य व्यवस्था 'विवाह' से विद्रोह..... यानी पति सत्ता का तिरस्कार। पति की मृत्यु के बाद 'सती' होने से इनकार दृ परिवार सत्ता से विद्रोह ..... 'सिसोदियो म्हारो कोई क्या कर लेसी' कहकर राज्य सत्ता से विद्रोह।"6

मीराँ को विद्रोही– क्रांतिकारी घोषित करने के प्रगतिशील –फेमिनिज्म से उनकी कविता के प्रति निष्पक्ष राय के स्थान पर वैचारिक दुराग्रह उत्पन्न होने का खतरा बढ़ जायेगा जिसके कारण उसकी कविता का एक पक्ष दबा ही रह जायेगा। मीराँ का विद्रोह स्थापित व्यवस्था से नहीं था उसका विद्रोह व्यवस्था की विसंगतियों और व्यवस्था की ओट में चल रही सामंती मानसिकता से था। रिश्तेदारी,नातेदारी और विवाह व्यवस्था के प्रति मीराँ में विद्रोही दुराग्रह नहीं था अगर ऐसा होता तो मीराँ कभी यह नहीं कहती 'छैल विराणों लाख के हे, अपणे काज न होइ,ताके संग सीधारतां हे, भला न कहसी कोइ' और न ही वह काग उड़ाकर पण्डित– जोशी से बुझावल करती और न ही वह यह कामना करती कि"कागा सब तन खाइयो चुण चुण खइयो माँस, दो नैणा मत खाइयोपिया मिलन की आस।"

मीराँ की छवि के रूप विविध है। वह संघर्षी है, साहसी है, कभी अबला है तो कभी सबला ।परन्तु एक रूप ऐसा है जिसका अथ भी मीराँ है और इति भी मीराँ। वह रूप है प्रेमाभक्ति की दरद भरी दास्ताँ का । जिसे मीराँ यूँ अभिव्यक्त करती हैदृ'हेरी म्हा तो दरद दिवांणी म्हारां दरद न जाण्यां कोय'जैसे जैसे मीराँ का दरद बढ़ता है वैसे वैसे मीराँ कृष्णमय होती जाती है।अब वह अरज करती हैं तो सिर्फ गिरधारी से, मिलना चाहती हैं तो सिर्फ माधो से और वह राह देखती हैं तो सिर्फ मुरारि की – 'ठाड़ो अरज करां गिरधारी, राख्यां लाज हमारी,मीराँ रे प्रभु मिलव्यो माधो,जनम जनम री क्वांरी'प्रेमा भक्ति का दरद ही है जिसने मीराँ को जनम जनम की कुँवारी बना रखा है। मीराँ की नींद को उड़ा रखा है। प्रेम की आंच में तपती मीराँ दरदमयी होकर ही रमैया के रंग में रम जाती हैं और खुद को रमैया पर ढुलकाती हैं –रमैया बिन नींद न आवै,नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आँच ढुलावै' यह दरद ही है जिसमें मीराँ डूब गई और वह मीराँ ही थी जिसमें दरद डूब गया।वह लगन ही थी जो मीराँ को लग गई और वह मीराँ ही थी जो लगन को अमर कर कर गई–ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी,तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है,तलफ तलफ जिव जासी।'

जिस प्रकार मीराँ के व्यक्तित्त्व में विरुद्धों का सामंजस्य है, उसी प्रकार मीराँ की कविता में भावों का संतुलन। मीराँ के व्यक्तित्व के प्रति एक राय हो सकती और न ही मीराँ की कविता के प्रति निर्णय की एक स्थिति। मीराँ की कविता शब्दों के दीप में भावों की ज्योति की तरह है जिसकी लो में मीराँ का दरद तलफ तलफ जिव जासी बनकर अपने उदात्त रूप में आसमान की ऊंचाई प्राप्त करता है और जोत में जोत मिला जा की पूर्णाहुति के साथ पूर्णकाम।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. माधव हाड़ा, मीराँ की कविता में स्त्री अनुभव और संघर्ष, कथा पत्रिका, अंक16, मई 2012
2. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ 148–149, भारतीय ज्ञानपीठ, पांचवां संस्करण 2015 पर उद्धृत
3. डॉ. प्रमोद कुमार दुबे, भक्ति की सनातन धारा में मीराँ, कथा पत्रिका, अंक 16, मई 2012
4. मैनेजर पाण्डेय, मीराँ : स्त्री–स्वतंत्रता और संघर्ष का काव्य, कथा पत्रिका, अंक 16, मई–2012
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, उन्नीसवां संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 50
6. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, पृष्ठ 148, भारतीय ज्ञानपीठ, पांचवां संस्करण 2015

❖◆❖